# श्री गणेश

और

# अन्य कथाऐं





# श्रीगणेश और अन्य कथाएँ

[ छोटे बच्चों के लिये उपदेशप्रद कहानियाँ ]

लेखक

श्रीनाथसिंह

प्रकाशक

'दीदी' कार्यालय

सुभाष नगर, इलाहाबाद

प्रथम बार } १६५८ { मूल्य ५० नये पैसे

## विषय-सूची

# श्रीगणेश और अन्य कथाएँ

## श्रीगणेश

श्रीगणेशजी महादेवजी के बेटे हैं। छुटपन में ये भी वैसे ही थे, जैसे और सब बालक होते हैं। इनके सूंड़ नहीं थी। वह बाद में लगाई गई। वह किस तरह, सुनियेः—

एक बार महादेवजी समाधि लगा कर पूजा करने लगे। अपने गणों को चारों तरफ खड़ा करवा दिया और आज्ञा दी—"जब तक मेरी पूजा पूरी न हो, मेरे पास कोई आने न पावे। अगर कोई आवे, तो उसका सिर काट लो।"

गण जानते थे कि गणेशजी बहुत चंचल हैं। कौन जाने कि वे खेलते हुए इधर आ निकलें! इसलिए एक गण ने डरते हुए पूछा—"महादेव, अगर गणेशजी आवें तो!"

महादेवजी ने कहा—"नियम सब के लिए है।"

यह कह उन्होंने साँस खींच ली, आंखें बंद कर लीं और अपनी पूजा में लीन हो गये।



पार्वतीजी ने प्रेम से लड्डू खिलाये। —पृष्ठ ७



महादेवजी के मस्तक पर चन्द्रमा चमक रहा था। सिर पर से गंगा हर-हर करती हुई गिर रही थीं। तन में ताजी भभूत लगी हुई थी, जो दूर से चाँदी की तरह चमक रही थी। गले में काले नाग फन काढ़े झूल रहे थे।

गणेशजी को महादेव का यह रूप बहुत ही सुन्दर लगा। वे गङ्गा में नहाने, चन्द्रमा को छूने और सांपों को पकड़ने दौड़े।

गणों को बड़ी फिक्र लगी कि अब क्या करें? वे पार्वतीजी के पास गये कि वे बालक गणेश को रोकें। पार्वतीजी ने कहा कि बालक को खेलने दो, और अपने काम में लग गईं।

बालक गणेश महादेवजी की तरफ बढ़ने लगे। गणों ने उनको पकड़ा, पर वे भी उनके साथ घिसटने लगे। एक-एक करके सब देवता आये, पर गणेशजी के आगे किसी का जोर न चला। तब गणों ने उनका सिर काट लिया।

बस, पार्वतीजी को गुस्सा आ गया। कैलाश उनके गुस्से की ललाई से लाल हो उठा। शेष के फन पर पृथ्वी डगमगाने लगी। इंद्र का आसन डोलने लगा। आंधी चलने लगी।

महादेवजी को आंख खोलनी पड़ी। देखा कि गणेशजी का सिर धड़ से अलग पड़ा है और सब देवता हाथ जोड़े खड़े हैं और कह रहे हैं—"हे देवों के देव महादेव! गणेश जी को इसी समय जिलाओ, नहीं तो पार्वतीजी का क्रोध प्रलय मचा देगा।"

महादेवजी की समझ में सब बात आ गई। उन्होंने ब्रह्माजी से कहा—"तुरन्त एक नया सिर गणेशजी के शरीर में लगाओ।"

ब्रह्माजी हाथी का बच्चा बना रहे थे। उस काम को अधूरा ही छोड़ कर आये थे। जल्दी में वही सिर लेते आये और गणेशजी के कंधों पर चिपका दिया।

महादेवजी ने अपने कमंडल से एक चुल्लू पानी उस पर फेंका और गणेशजी उठकर खड़े हो गये। नया सिर पाकर वे और भी प्रसन्न हुये, क्योंकि उसमें लम्बी सूंड़ थी और दूर ही से उन्हें लड्डुओं की बास मिल जाती थी।

परन्तु पार्वतीजी को यह नया सिर कुछ अच्छा न लगा। तब महादेवजी ने उन्हें समझाया—"आदमी का मान उसके रूप से नहीं, उसके काम से होता है। गणेशजी पढ़ने में तेज, लिखने में तेज, बल में बड़े होंगे। इसलिये इनका नाम लेकर लोग नया काम शुरू करेंगे और इनकी पूजा सब देवताओं से पहले होगी।"



इससे पार्वतीजी को कुछ संतोष हुआ। पार्वतीजी उन्हें अंदर ले गईं। प्रेम के साथ ताजे-ताजे बहुत से लड्डू खिलाये और एक चूहा उन्हें देकर कहा—"बेटा, अब तुम सबसे बुद्धिमान और सबसे बली हो। इसीलिये तुम्हारे लिए यह और भी जरूरी है कि तुम इस चूहे पर सवारी करो।"

"यह चूहा क्या है माँ?" गणेशजी ने पूछा।

"यह घमंड है, जिसे महादेवजी ने चूहा बना दिया है। तुम इस पर काबू रखना।"

गणेश जी उस महाबली चूहे पर सवार हो गये और अब तक सवार हैं। जो उनका नाम लेकर काम करते हैं, उनके सब काम सिद्ध होते हैं, क्योंकि वे अपने धन और बल का घमंड नहीं करते।

---

# महादेव

प्राचीन काल में देवताओं और राक्षसों में बड़ी लडाइयाँ होती थीं। देवता बुद्धिमान होते थे, इससे वे जीत जाते थे। राक्षस मूर्ख होते थे इससे वे बली होने पर भी हार जाते थे।

देवताओं में सबसे बलवान महादेवजी थे। उनमें इतनी शक्ति थी कि क्षण भर में सारे संसार का नाश कर सकते थे।

जब ये अपनी जटाएँ खोल कर, त्रिशूल उठा कर नृत्य करते थे, तब इनके पैर पड़ने से पृथ्वी चूर-चूर होने लगती थी। इनके त्रिशूल की मार से तारे टूट-टूट कर गिरने लगते थे। इनकी जटाओं से गंगा निकल कर सारे संसार को डुबने लगती थी।

राक्षसों ने सोचा कि महादेवजी को काबू में कर लिया जाय तो देवताओं का हराना सहज हो जायगा। यह काम एक राक्षस को, जो सबसे चतुर था, सौंपा गया।

वह राक्षस कैलाश पर्वत पर जाकर महादेवजी का ध्यान करने लगा। महादेवजी को लोग भोलानाथ भी





विष्णु बोले—'जरा इस तरह तो नाचो।"—पृष्ठ १२

कहते हैं, क्योंकि वे थोड़े ही में खुश हो जाते हैं। सो इस राक्षस पर भी वे खुश हो गये और बोले—"बेटा, माँगो, जो चाहो सो माँग लो।"

राक्षस यह तो चाहता ही था। हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। बोला—"हे देवों के देव महादेव! मुझे एक छोटा सा वर दीजिए। मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँ, वह उसी समय भस्म हो जाय।"

"एवमस्तु!" कहकर महादेव जी ने आँखें बन्द कर लीं।

अब तो यह राक्षस उन्हीं के मस्तक पर हाथ धरने चला। गणों ने महादेवजी को फौरन जगाया।

महादेवजी ने पूछा—"असुर राज, अब तुम क्या चाहते हो?"

वह राक्षस बोला—"महाराज, आपका वरदान सच न निकला तो? इसलिए मैं चाहता हूँ कि आपके सामने ही इसकी परीक्षा कर लूँ। यहाँ और कोई है नहीं, इसलिए आपके ही मस्तक पर हाथ रखना चाहता हूँ।"

महादेवजी ने कहा—"अच्छा आओ।"

राक्षस आगे बढ़ा।

अब तो पृथ्वी डगमगाने लगी और सब देवता घबराये हुए महादेवजी के पास आये। बोले—"हे देवों के



देव महादेव! यह आपने क्या किया? आप अपने लिए नहीं हैं, हम सबके लिए हैं। इसलिए फौरन भागिये। इस राक्षस से अपनी रक्षा कीजिये।"

महादेवजी उठ कर भाग चले। राक्षस ने उनका पीछा किया। वन, नदी, पहाड़, समुद्र लांघते हुए वे जहाँ-जहाँ भी गये, राक्षस भी गया। वर्षों यह दौड़ जारी रही और देवताओं में घबड़ाहट बनी रही।

तब सब देवता विष्णु भगवान् के पास गये। बोले—"महाराज, अब तो आप ही भगवान् शङ्कर की रक्षा कर सकते हैं। कोई उपाय सोचिये।"

विष्णु भगवान् बड़े चतुर थे। उन्होंने फौरन ही एक राजकन्या का रूप धारण किया और रास्ते में आ खड़े हुए। उस राक्षस को रोक कर बोले—"तुम कौन हो?"

राक्षस बोला—"तुम कौन हो?"

स्त्री रूपधारी विष्णु बोले—"मैं सुख और आनंद की देवी हूँ। मैंने सुना है कि महादेवजी सबसे बड़े बलवान हैं, इसलिए मैं उनसे विवाह करना चाहती हूँ।"

राक्षस बोला—"उनसे भी बलवान मैं हूँ। वह देखो, मेरे डर से वे भागे जा रहे हैं।"

स्त्री रूपधारी विष्णु बोले—"ऐसी बात है! तब तो मैं तुम्हीं से बिवाह करूँगी। लेकिन तुम शायद मेरी तरह न नाच सको। महादेवजी तो मेरी तरह नाच लेते हैं।"

"मैं महादेवजी से भी अच्छा नाच जानता हूँ।"

विष्णु ने कहा—"अच्छा दिखाओ।"

राक्षस नाचने लगा। महादेवजी भी दूर से खड़े उसका नाच देखने लगे।

विष्णु बोले—"जरा इस तरह तो नाचो।" और वे खुद भी नाचने लगे। राक्षस उनको देख-देख कर वैसा ही नाचने लगा। फिर तो जैसे-जैसे विष्णु भगवान् हाथ-पाँव चलाते, वैसे ही वह राक्षस भी हाथ-पाँव चलाता।

एक बार विष्णु भगवान् ने अपने सिर पर हाथ रखा। तब उस राक्षस ने भी अपने सिर पर हाथ रखा। बस, वह जल उठा और जोर-जोर से 'हाय-हाय' चिल्लाने लगा।

विष्णु भगवान् का इशारा पाकर महादेवजी वापस लौट आये। राक्षस बोला—"महाराज, अपना वरदान वापस लीजिये। मुझे बचाइये!"



विष्णु भगवान् बोले—"दिया हुआ वरदान वापस नहीं लिया जाता।"

देखते-देखते राक्षस जलकर राख हो गया।

देवताओं ने उसको पहचानने की कोशिश की, पर पहचान न पाये। तब उन्होंने उसका नाम भस्मासुर रखा। भस्मासुर का अर्थ है 'जला हुआ राक्षस'।

"अपने साथ भलाई करनेवाले को जो कष्ट पहुँचाता है, उसकी यही गति होती है!" महादेवजी ने कहा और वे कैलाश पर चले गये।

——

# हनुमानजी

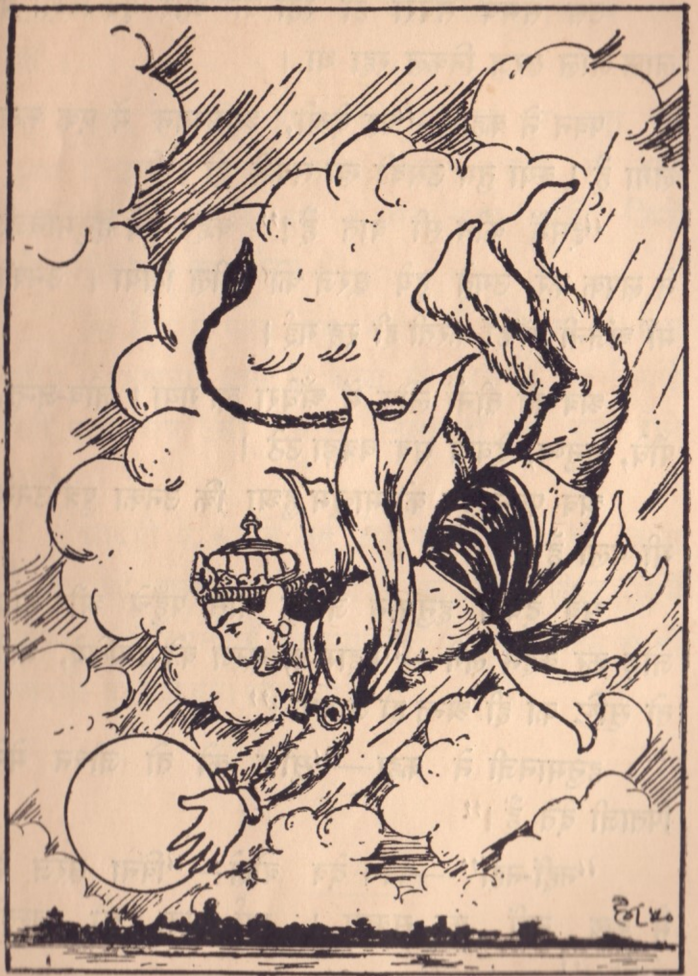
बहुत दिन हुये, दक्षिण देश में एक वन था। उसमें एक देवता रहते थे। उनका नाम पवन था। वे जब सांस लेते तब आंधी सी आ जाती। पेड़ पौधे, फूल, जीव-जन्तु सब उन्हीं की सांस से जिन्दा थे। आज भी वे देवता साँस लेते हैं। लेकिन दिखलाई नहीं पड़ते। पुराने जमाने में वे दिखलाई पड़ते थे।

उस देवता के घर में एक लड़का पैदा हुआ, जिनका नाम हनुमान रखा गया। उनके पिता रोज कहते—"मैं चाहता हूँ, यह लड़का मुझसे भी बली निकले। लेकिन इसमें तो मुझको कोई गुण दिखाई नहीं पड़ता।"

हनुमान धीरे-धीरे बड़े हुये और जङ्गल में बेर तोड़ कर खाने लगे।

एक दिन उनके पिता ने कहा—"बस, तुम बेर ही खाया करोगे और किसी काम के नहीं हो।" हनुमान ने कहा—"यह तो जमीन है। अगर आसमान में फल लगे तो मैं उसको भी तोड़ कर खा सकता हूँ।"





हनुमानजी ने सूरज कोलील लिया। --पृष्ठ १६

उस समय सवेरा हो रहा था और पूर्व दिशा में लाल-लाल सूरज निकल रहा था।

पवन ने कहा—"वह देखो, आसमान में एक फल लगा है। क्या तुम उसको खा सकते हो?"

"इसमें कौन सी बात है!" कहते हुये हनुमानजी ने लपक कर उगते हुये सूरज को लील लिया। उनकी माँ अंजनी हाँ-हाँ करती ही रह गई।

अब तो तीनों लोक में अँधेरा छा गया। जीव-जन्तु, पौधे, मनुष्य, देवता सब घबड़ा उठे।

अब पवन देव को मालूम हुआ कि उनका पुत्र उनसे भी बली है।

सब देवता हनुमान जी के पास पहुँचे और हाथ जोड़ कर कहने लगे—"महाराज, सूरज को उगलिये, नहीं तो सृष्टि का ही अन्त हो जायगा।"

हनुमानजी ने कहा—"सृष्टि को तो जीवन मेरे पिताजी देते हैं।"

"नहीं-नहीं"—पवन देव बोले—"बिना सूरज के मैं कुछ नहीं कर सकता। सूर्य देवता को जल्दी छोड़ो।"

तब हनुमानजी ने सूर्य देवता को उगल दिया।



उसी दिन से उनके बल की धाक दुनिया में जम गई।

पवन देव को अपने बेटे हनुमान पर बड़ा गर्व हुआ। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"बेटा, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम वे सब काम करोगे, जिन्हें कोई और नहीं कर सकेगा।"

उस दिन से पवन देव सूरज की किरणों में छिप गये। वे अपना काम तो आज भी करते हैं, पर दिखाई नहीं पड़ते और उसी दिन से हनुमानजी की पूजा होने लगी।

आदमी के सामने जब कोई कठिन काम आ जाता है, तब वह इसीलिए हनुमानजी का नाम लेकर उसमें जुटता है। कहते हैं, हनुमानजी का नाम लेने से ही आदमी का बल दूना हो जाता है।

---

# अर्जुन की तपस्या

धनुष से बाण चलाने में अर्जुन बहुत निपुण थे। उनका निशाना बहुत ठीक बैठता था। परन्तु वे और भी निपुण होना चाहते थे। इसलिए हिमालय पहाड़ में तपस्या करने चले गये।

वहाँ वे महादेवजी का ध्यान करके चारों तरफ तीर छोड़ने लगे।

कुछ दिन के बाद उनकी तपस्या से महादेवजी बड़े प्रसन्न हुये और उनके मन में आया कि अर्जुन को वरदान देना चाहिए।

लेकिन एक बार भस्मासुर को वरदान देकर वे धोखा खा चुके थे। इसलिए सोचा कि इस बार परीक्षा ले लेंगे, तब वरदान देंगे।

तब महादेवजी जङ्गली शिकारी का वेश बनाकर उस वन में गये। उनके साथ पार्वतीजी भी वेश बदल कर आईं।

महादेवजी और पार्वतीजी वेश बदल कर एक पेड़ की आड़ में खड़े हो गये और अर्जुन की तपस्या देखने लगे।





सूअर मेरे तीर से मरा है।"—पृष्ठ २०

अर्जुन महादेवजी का नाम लेकर आवाज के सहारे वन जीवों पर तीर चलाता और उन्हें मार गिराता।

इसी समय एक जङ्गली सूअर अर्जुन पर झपटा। अर्जुन आँख मूँदे अपनी साधना में लगा हुआ था। आहट के सहारे ही उसने सूअर पर बाण चला दिया। उसी समय महादेवजी ने भी अपना पिनाक तानकर सूअर पर तीर मारा। दोनों तीर सूअर पर एक साथ ही गिरे।

अर्जुन ने आँखें खोल दीं। देखा कि एक जङ्गली आदमी अपनी स्त्री के साथ खड़ा है। अर्जुन बोला—"जिस सूअर पर मैंने तीर चलाया, उस पर तुमने भी तीर क्यों चलाया?"

महादेवजी बोले—"यही तो मैं भी पूछता हूँ कि जिस सूअर पर मैंने तीर चलाया, उस पर तुमने तीर क्यों चलाया?"

अर्जुन कहता कि सूअर मेरे तीर से मरा है और महादेवजी कहते कि सूअर मेरे तीर से मरा है।

अब यह फैसला कौन करे? तब जङ्गली के वेश में खड़े महादेवजी ने कहा—"सूअर मेरे बाण से मरा है यह तुझे मानना ही पड़ेगा। अगर नहीं मानता तो आ, मुझसे लड़।"



एक जङ्गली के मुख से ऐसी बात अर्जुन से सही न गई। वह महादेवजी पर तान-तान कर तीर मारने लगा। लेकिन वे तीर महादेवजी के शरीर पर इस तरह गिरने लगे, जैसे पानी की बूँदें हों।

महादेवजी मुस्कराये। बोले—"बस, इसी का इतना घमंड है!"

इससे अर्जुन का गुस्सा बहुत बढ़ गया। उसने महादेवजी पर और भी जोर से तीरों की बौछार की। परन्तु सब तीर खाली गये। तब वह धनुष से ही महादेवजी को मारने दौड़ा। इस पर महादेवजी ने उसका धनुष छीन लिया। इस पर अर्जुन को बड़ा अचंभा हुआ, पर उसने हार न मानी। तब उसने तलवार खींच ली। अरे यह क्या! महादेवजी पर पड़ते ही तलवार दो टुकड़े हो गई।

फिर तो अर्जुन महादेवजी से कुश्ती लड़ने लगा। पर महादेवजी ने उसे इस तरह अपने एक हाथ में पकड़ कर उठा लिया, जैसे कोई बच्चा गुड्डा पकड़ कर उठाता है। अर्जुन का घमंड चूर हो गया। उसने घमंड छोड़ कर महादेवजी का एक बार फिर ध्यान किया। तब महादेवजी ने अपना असली रूप प्रकट किया।

अर्जुन तुरन्त ही महादेवजी के चरणों पर गिर पड़ा और क्षमा मांगी। महादेवजी ने उसे क्षमा कर दिया और कहा—"बेटा अर्जुन, अपने बल का घमंड कभी नहीं करना चाहिये।"

अर्जुन ने महादेवजी का यह उपदेश स्वीकार किया और तमाम जिंदगी में इसका पालन करने का वादा किया।

तब महादेवजी ने उसे दिव्य अस्त्र-शस्त्र देकर बिदा किया और वरदान दिया कि धनुष-बाण की लड़ाई में उसे कोई जीत नहीं सकेगा।

---

# संजीवनी विद्या

आजकल मरे हुए मनुष्य को कोई जीवित नहीं कर सकता। परन्तु प्राचीन काल में ऐसा न था। तब संजीवनी विद्या की सहायता से मरे हुए मनुष्य जी सकते थे।

यह संजीवनी विद्या पहले देवताओं को मालूम न थी। देवताओं के गुरु बृहस्पति को भी इसका पता न था। परन्तु राक्षसों को यह विद्या मालूम थी। उनके गुरु शुक्राचार्य इसे खूब अच्छी तरह जानते थे।

उन दिनों देवताओं और राक्षसों में बराबर युद्ध होता रहता था। युद्ध में जो राक्षस मरते थे, उन्हें शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से जिला लेते थे। इधर देवताओं के गुरु बृहस्पति मरे हुये देवताओं को जिला नहीं सकते थे। इस तरह देवता घटते जाते थे और राक्षस बढ़ते जाते थे।

अंत में देवताओं ने तय किया कि बिना संजीवनी विद्या जाने वे राक्षसों से जीत नहीं सकते। सब देवता मिलकर अपने गुरु बृहस्पति के पास गये। बोले—"महाराज, चाहे जैसे हो, संजीवनी विद्या मालूम कीजिये।"



"पेट फाड़कर बाहर निकल आया।"—पृष्ठ ३०



बृहस्पति का छोटा पुत्र कच वहीं बैठा था। वह बोल उठा—"पिताजी, आज्ञा दें, तो मैं राक्षसों के गुरु के पास जाऊं और यह विद्या सीख कर आऊं।"

बृहस्पति बोले—"बेटा, तुम अभी निरे बालक हो। राक्षस जब तुम्हें पहचानेंगे, तब बिना तुम्हारा प्राण लिए न मानेंगे। मैं कैसे कहूँ कि तुम जाओ?"

तब देवताओं ने कहा—"महाराज, कच बड़ा ही सुन्दर और प्रिय है। राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य की कन्या देवयानी इसे देखते ही मोहित हो जायगी और इसकी रक्षा करेगी। इसलिए आप कच को जाने दें।"

बृहस्पति ने कच को असुरों के गुरु शुक्राचार्य के पास जाने की आज्ञा दे दी।

कच ने शुक्राचार्य के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया।

"तुम कौन हो?" शुक्राचार्य ने पूछा।

"गुरुदेव, मैं बृहस्पति का पुत्र कच हूँ। आप ज्ञान में सबसे बड़े हैं, इसलिए आपकी सेवा में रहकर विद्या पढ़ने आया हूँ।"

शुक्राचार्य ने कहा—"तुम मेरे शत्रु के पुत्र हो। पर इससे क्या? मैं तुम्हें शिष्य बनाऊँगा।"

कच शुक्राचार्य के यहाँ रह कर विद्या पढ़ने लगा और शुक्राचार्य और उनकी पुत्री देवयानी की बड़ी सेवा करने लगा। देवयानी उससे बड़ी प्रसन्न हुई।

राक्षसों को जब यह पता चला कि कच बृहस्पति का पुत्र है, तब वे बहुत डरे। सोचने लगे कि कहीं यह संजीवनी विद्या न सीख ले? इसलिए राक्षसों ने उसको मार डालने का निश्चय किया।

एक दिन जब कच जङ्गल में अपने गुरु की गायें चरा रहा था, राक्षसों ने उसे घेर लिया और उसे मार कर उसका मांस कुत्तों को खिला दिया।

शाम को जब गायें वापस लौटीं और कच न आया, तब देवयानी सोच में पड़ गई। उसने अपने पिता के पास जाकर कहा—"पिताजी, रात हो आई, गायें लौट आईं, परन्तु कच अभी नहीं आया। जरूर उसे किसी ने मार डाला।"

यह कहते-कहते देवयानी की आंखों में आंसू आ गये। बेटी को दुखी देखकर शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या का प्रयोग किया। बोले—"मेरे प्यारे शिष्य कच, मेरे सामने आओ।"

बस, कुत्तों का पेट फाड़-फाड़ कर कच के शरीर के टुकड़े निकल आये और आपस में जुड़ गये और कच उठकर खड़ा हो गया।



देवयानी ने पूछा—"क्यों कच, तुम कहाँ रह गये थे?"

कच ने कहा—"मैं गायें चरा रहा था। उसी समय कुछ राक्षस आये और बोले—"मारो इसे, यही बृहस्पति का पुत्र कच है। मैंने सिर्फ तलवारें खिंचती देखीं। फिर नहीं जानता कि क्या हुआ।"

शुक्राचार्य मुस्कराये। बोले—"खैर, आश्रम से दूर न जाया करो।"

इस तरह कुछ दिन और बीते। राक्षसों को कच को मारने का अब मौका न लगता। परन्तु एक दिन सबेरे जब वह देवयानी के लिये फूल तोड़ रहा था, एक राक्षस ने सर्प बनकर उसे डस लिया और झाड़ी-ही-झाड़ी उसे जङ्गल में घसीट ले गया और उसे काट-काट कर समुद्र में फेंक दिया।

देवयानी ने इस बार भी पिता से कच को जिलाने की प्रार्थना की। शुक्राचार्य ने पहले की तरह फिर संजीवनी विद्या का प्रयोग किया और कच समुद्र की लहरों को चीर कर जीवित निकल आया।

अब तो राक्षस बड़ी चिन्ता में पड़े। वे सोचने लगे कि कच को किस तरह मारें कि गुरुदेव उसे जिला न सकें! उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने मौका पाकर एक दिन फिर कच को मार डाला। इस बार उन्होंने उसको जला डाला और उसकी भस्म को मदिरा में घोल कर शुक्राचार्य को पिला दिया। राक्षसों के गुरु तो वे थे ही, मदिरा पीने के बड़े शौकीन थे। बिना देखे ही सब पी डाला। इस तरह कच के शरीर की राख उनके पेट में पहुँच गई।

उस दिन फिर जब शाम हुई और गायें अकेली लौटीं, तब देवयानी शुक्राचार्य के पास जाकर बोली—"पिताजी, जान पड़ता है, राक्षसों ने फिर कच को मार डाला। उसके बिना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। आप फिर उसे जिलाने की कृपा करें।"

शुक्राचार्य ने फिर संजीवनी विद्या का प्रयोग किया और बोले—"शिष्य कच, आ जाओ।"

उनके पुकारते ही कच जीवित हो उठा और उनके पेट से बोला—"गुरुदेव, मैं यहाँ आपके पेट में हूँ। यदि आपका पेट फाड़ कर बाहर निकलूं, तो मुझे गुरु हत्या का पाप लगेगा। इसलिए मुझे यहीं रहने दीजिए।"



यह सुनकर शुक्राचार्य बड़े अचरज में पड़ गये। बोले—"हे ब्रह्मचारी, तुम मेरे पेट में कैसे पहुँचे?"

कच ने सारी कथा पेट के अन्दर से बता दी।

शुक्राचार्य को राक्षसों की इस करतूत पर बड़ा क्रोध आया और वे बोले—"मैं पापियों का सत्यानाश करूँगा और देवताओं की तरफ चला जाऊँगा।'

फिर वे सोचने लगे, इसमें मेरा भी अपराध है! मैं मदिरा जो पीता हूँ! मदिरा पीने से ही मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं रही और मैंने यह अनर्थ कर डाला।

उन्होंने उसी दम यह घोषणा की कि जो मदिरा पीयेगा, धर्म उसका साथ न देगा और सभी लोग उसकी निंदा करेंगे।

इसके बाद शुक्राचार्य ने अपनी पुत्री से पूछा—"बेटी, अब तो तुम्हें दो में से एक को चुनना पड़ेगा। या तो मैं जिंदा रह सकता हूँ या कच; क्योंकि यदि कच मेरा पेट फाड़ कर निकलेगा, तो मैं मर जाऊँगा। बोलो, क्या चाहती हो? मैं वही करूँगा।"

देवयानी जोर-जोर से रोने लगी। बोली—"पिता जी, मैं चाहती हूँ, आप भी जीवित रहें और कच भी जीवित हो जाय।"

"दोनों नहीं हो सकता।" शुक्राचार्य बोले।

'हाय, अब मैं क्या करूँ?' यह कहकर देवयानी और जोर-जोर से रोने लगी।

पुत्री का यह रोना शुक्राचार्य से देखा न गया। वे बोले—"हे बृहस्पति के पुत्र कच! देवयानी के लिए तुम्हें जिलाना ही पड़ेगा और मुझे भी जीवित रहना होगा। इसका एक ही उपाय है। मैं तुम्हें संजीवनी विद्या सिखा दूँ। तुम मेरे पेट के अंदर रहकर उसे अच्छी तरह सीख लो और मेरा पेट फाड़ कर निकल आओ। फिर मुझे भी जिला दो।"

कच की इच्छा पूरी हो गई। उसने शुक्राचार्य के कहे अनुसार संजीवनी विद्या सीख ली और उनका पेट फाड़कर बाहर निकल आया। शुक्राचार्य धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़े और मर गये। तब कच ने जो संजीवनी विद्या सीखी थी, उसकी सहायता से उन्हें जिन्दा कर दिया।

कच संजीवनी विद्या सीखने तो आया ही था। उसने वापस जाने की आज्ञा मांगी। शुक्राचार्य ने उसे बड़े प्रेम से बिदा किया।

इस तरह देवता भी युद्ध में मरने के बाद जीवित किये जाने लगे और फिर धीरे-धीरे राक्षसों को उन्होंने पूरी तौर से हरा दिया।

---

# गोवर्धन की पूजा

ब्रज में एक छोटा सा पहाड़ है, जिसे गोवर्धन कहते हैं। इस पहाड़ पर बारहों मास हरियाली रहती है और गायों के चरने लायक अच्छी जगहें हैं। जब श्रीकृष्ण जी का जन्म हुआ था तब यह पहाड़ और भी अधिक हरा भरा था। दूर से वह बहुत अच्छा दिखाई पड़ता था। बालक कृष्ण खेलते खेलते घर से बाहर निकलते तो घंटों इस पहाड़ की ओर टकटकी बाँध कर देखा करते। एक बार माता यशोदा से उन्होंने पूछा—"माँ, वह क्या है?"

यशोदा ने जवाब दिया—'बेटा, यह गोवर्धन पहाड़ है।"

कृष्ण बोले—"माँ, मैं उस पर चढ़ूंगा।"

यशोदा ने कहा—"अभी नहीं, कुछ बड़े हो जाना, गायों को ले जाना, तब चढ़ना।"

जल्दी-जल्दी समय बीत गया। बालक कृष्ण बड़े हुए और बाल सखाओं के साथ गाय चराने जाने लगे। कभी किसी तरफ जाते, कभी किसी तरफ। एक दिन सबकी राय हुई कि गोवर्धन चलना चाहिए। कृष्ण



"वे गोवर्धन की पूजा करने चले।"—पृष्ठ ३४



बंशी बजाते हुए आगे-आगे चले, पीछे गौवों का समूह और बाल-सखाओं की मंडली चली।

गोवर्धन पर चढ़कर बालक कृष्ण ने दूर तक फैला हुआ ब्रज-मंडल देखा। कहीं गाय बैल चर रहे थे, कहीं हरे भरे खेत खड़े थे, कहीं जमुना लहर मार रही थी। कृष्ण ने बाल-सखाओं से कहा—"देखो, हमारा देश कैसा सुन्दर है, बिलकुल स्वर्गसा जान पड़ता है!"

एक सखा ने कहा—"ऐसे हरे भरे सुन्दर देश में जन्म लेकर जो स्वर्ग को अच्छा कहता है वह बेवकूफ है।"

कृष्ण बोले—"गोवर्धन हमारे देश का मुकुट है, हमें इसकी पूजा करनी चाहिए।"

दूसरे सखा ने कहा—"ब्रज में इन्द्र की पूजा होती है।"

कृष्ण ने जवाब दिया—"अब गोवर्धन की होगी।"

सारे ब्रज-मंडल में चर्चा होने लगी कि कृष्ण बड़ी भूल कर रहे हैं। गोवर्धन की पूजा करने को कहते हैं। इन्द्र नाराज हो जायेंगे तो सारे ब्रज का नाश हो जायगा।

जब कृष्ण को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने कहा—"इन्द्र स्वर्ग के राजा हैं, ब्रज का राजा तो गोवर्धन

है। गोवर्धन की पूजा करना मानों सारे ब्रज की पूजा करना है।"

लोगों की समझ में बात आ गई। इन्द्र की पूजा बन्द करके वे गोवर्धन की पूजा करने चल पड़े। गोवर्धन की तारीफ में बड़े बड़े गीत गाये जाने लगे। उस पर बड़ा भारी मेला लग गया।

इन्द्र को यह समाचार मालूम हुआ तो उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने अपने सिपाही बादलों से कहा—"इतना पानी बरसाओ और बिजली गिराओ कि सारे ब्रज का नाश हो जाय और वह बह जाय।"

बादलों को क्या? हुक्म भर की देर थी। चारों तरफ से घेर कर ब्रज पर चढ़ आये और लगे मूसलधार पानी बरसाने तथा बिजली गिराने। अब तो ब्रजवासी घबड़ाये और कृष्ण के पास जाकर कहने लगे—"कहो, अब क्या करें?"

"गोवर्धन रक्षा करेगा। चलो, उसके पास चलें।" यह कहकर कृष्ण ने वंशी बजाई। लोगों का भय दूर हुआ।

अब भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन को उँगली पर उठा लिया था। बाल-सखाओं ने अपनी लकड़ी की टेक उसमें लगा दी थी। उसके नीचे सारा ब्रज-मंडल इकट्ठा होकर



चिल्ला रहा था—"गोवर्धन की जय! ब्रज-भूमि की जय! जन्म-भूमि की जय!"

यशोदा कृष्ण के पास जाकर कहने लगीं—"हाय हाय बेटा! पहाड़ के बोझ से तुम्हारी उँगली टूट न जाय!"

कृष्ण ने जवाब दिया—"माँ देखो न! सभी के लड़कों ने तो मदद लगा रखी है। इसी तरह सब मातायें अपने लड़कों को मना करेंगी तो ब्रज बह जायगा या रहेगा?'

ऊपर मूसलधार पानी बरस रहा था। नीचे भगवान् कृष्ण की वंशी बज रही थी और नाच गान हो रहा था। अन्त में इन्द्र हिम्मत हार गया। उसने अपने बादलों की फौज पीछे हटा ली और कृष्ण से माफी माँगी।

इसके बाद बहुत दिनों तक गोवर्धन की पूजा होती रही। भगवान्! वह कौन दिन होगा, जब हम भी अपनी जन्म-भूमि के लिए गाते-बजाते दुःखों का पहाड़ उठा लेंगे?

---

# भीम और हनुमान

भीम के बल की थाह नहीं थी। पहाड़ की तरह उनका शरीर था। कन्धे पर गदा रखकर वे चलते थे, तो पृथ्वी दहलती थी।

जो काम कोई नहीं कर सकता था, उसे भी भीम कर डालते थे। धीरे-धीरे भीम को अपने बल का बड़ा घमंड हो गया।

परन्तु एक बार भीम के बल की परीक्षा हुई। जरा इसकी भी कहानी सुन लीजिये :—

एक बार पांचों पाण्डव, जिनमें भीम भी थे, द्रौपदी सहित वन में घूम रहे थे। भीम सबसे बली थे, इसलिए द्रौपदी की रक्षा का भार उन्हें सौंप कर शेष चारों भाई कन्द-मूल की तलाश करने वन में दूर चले गये।

द्रौपदी का जी ऊब रहा था और भीम उसका मन बहलाने के लिए तरह-तरह की कहानियाँ सुना रहे थे।

उसी समय एक सुन्दर फूल हवा के झोंके से द्रौपदी के पास आ गिरा। द्रौपदी ने उस फूल को उठा लिया। फूल बहुत ही सुन्दर था और उसमें से मनमोहिनी सुगन्ध निकल रही थी।





"पहले मेरी पूँछ तो हटा लो।"—पृष्ठ ३६

द्रौपदी ने कहा—"इस फूल का पेड़ पास ही कहीं होगा। परन्तु यह वन इतना घना है कि कुछ पता नहीं चलता!"

भीम बोले—"कहो तो गदे की चोटों से सारा वन साफ कर दूँ।"

द्रौपदी मुस्कराई। बोली—"मैं जानती हूँ कि आप बहुत बली हैं। परन्तु मैं आपके बल को तब मानूँगी, जब आप इस वन को चीर कर उस पेड़ तक जायँ, जिसका यह फूल है और ऐसे ही कुछ और फूल लाकर मुझे दें।"

भीम ने गदा उठाई और जिधर से फूल आकर गिरा था, उसी ओर चल पड़े। उनकी गदे की मार से बड़े-बड़े पेड़ टूट-टूट कर इधर-उधर गिरने लगे और उस सघन वन के बीच से वे रास्ता बनाते हुए आगे बढ़ने लगे।

कुछ ही दूर जाने पर एक टीला दिखाई पड़ा और आगे जाने के लिए साफ रास्ता भी बना हुआ था। परन्तु उस रास्ते को एक बन्दर रोके हुए लेटा था।

भीम ने उसे गदे से ठेल कर कहा—"हटो यहाँ से। रास्ता क्यों रोके हुए हो?"



बन्दर ने आँखें खोलीं—"तुम तो मनुष्य जान पड़ते हो। मनुष्य को इतना ज्ञान तो होना ही चाहिए कि वह किसी को न सतावें!"

भीम बोले—"मैं तुमसे धर्म का उपदेश सुनने नहीं आया हूँ। रास्ता छोड़ो। मुझे आगे जाने दो।"

बन्दर बोला—"नहीं, यहाँ से आगे कोई नहीं जा सकता। वापस लौट जाओ।"

भीम के जी में आया कि एक गदा मार कर बन्दर को समाप्त कर दें। पर धीरज धर कर बोले—"क्यों अपनी जान देना चाहते हो? रास्ते से हट जाओ।"

बन्दर बोला—"मेरा जी ठीक नहीं है और तुममें इतनी भी शक्ति नहीं है कि मुझे हटा कर जा सको। पर शायद तुम मेरी पूँछ हटा सको।"

भीम गरज कर बोले—"क्या कहा? मैं तुम्हें नहीं हटा सकता हूँ?"

"पहले मेरी पूँछ तो हटा लो?" बन्दर ने मुस्करा कर कहा।

भीम के मन में आया कि इस बन्दर की पूँछ पकड़ कर इसे गोफन की तरह आसमान में घुमा कर इतनी जोर से फेकूं कि इसे भी कुछ दिन याद रहे।

भीम ने गुस्से में आकर उस बन्दर की पूँछ पकड़ तो ली, पर उठाने की कौन कहे, वह उनके हिलाये हिली भी नहीं।

तब भीम ने दोनों हाथों से पूँछ को पकड़ कर पूरा जोर लगाया। उनकी भौंहें तन गईं। शरीर से पसीना बहने लगा। आँखें बाहर निकल आईं। लेकिन बन्दर की पूँछ टस से मस न हुई।

तब तो भीम को बड़ा अचम्भा हुआ। उनका घमंड चूर हो गया। हाथ जोड़ कर वे बोले—"हे बन्दर, हनुमानजी के समान महाबली तुम कौन हो?"

"मैं हनुमान ही हूँ। कहो, क्या चाहते हो!"

भीम प्रसन्न होकर बोले—"मेरा यह बड़ा सौभाग्य है कि आज मुझे आपके दर्शन हुए। मैं आपका ही छोटा भाई भीम हूँ। आपसे लड़कर नहीं आपकी आज्ञा से आगे जाना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिये।"

यह कहकर भीम हनुमानजी के चरण पकड़ने दौड़े। हनुमानजी ने तुम्हें गले से लगा लिया और कहा—"देखो, मैं यहीं उन फूलों को मंगाता हूँ।"

यह कह कर हनुमानजी अपनी पूँछ बढ़ाने लगे। बढ़ते-बढ़ते पूँछ उस वृक्ष तक पहुँची, जिसका फूल भीम चाहते थे और एक खिली हुई डाली तोड़ कर खींच



लाई। उस डाली को भीम को देते हुए हनुमानजी ने कहा—"भाई, जो मेरा स्मरण करता है और अपने बल का घमंड नहीं करता, उसके सब मनोरथ पूरे होते हैं। तुमने घमंड छोड़ दिया है, इसलिए अब तुम्हारे भी सब मनोरथ पूरे होंगे।"

भीम उन फूलों को पाकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें लेकर द्रौपदी के पास वापस लौट आये।

द्रौपदी ने भीम के बल की बड़ी प्रशंसा की। पर भीम कुछ न बोले। तब फूल मुरझाने लगे। द्रौपदी बोली—"अरे यह क्या! ये फूल मुर झाये जा रहे हैं!"

भीम ने यह देखा, तो उन्हें हनुमान जी का उपदेश याद आया। फौरन ही बोले—"ये फूल मुझे मेरे बल के कारण नहीं, हनुमानजी की कृपा से मिले हैं।"

फूल फिर खिल उठे। उन्हें पाकर द्रौपदी बहुत प्रसन्न हुई। उस दिन से भीम का घमंड छूट गया।

# अगस्त्य मुनि

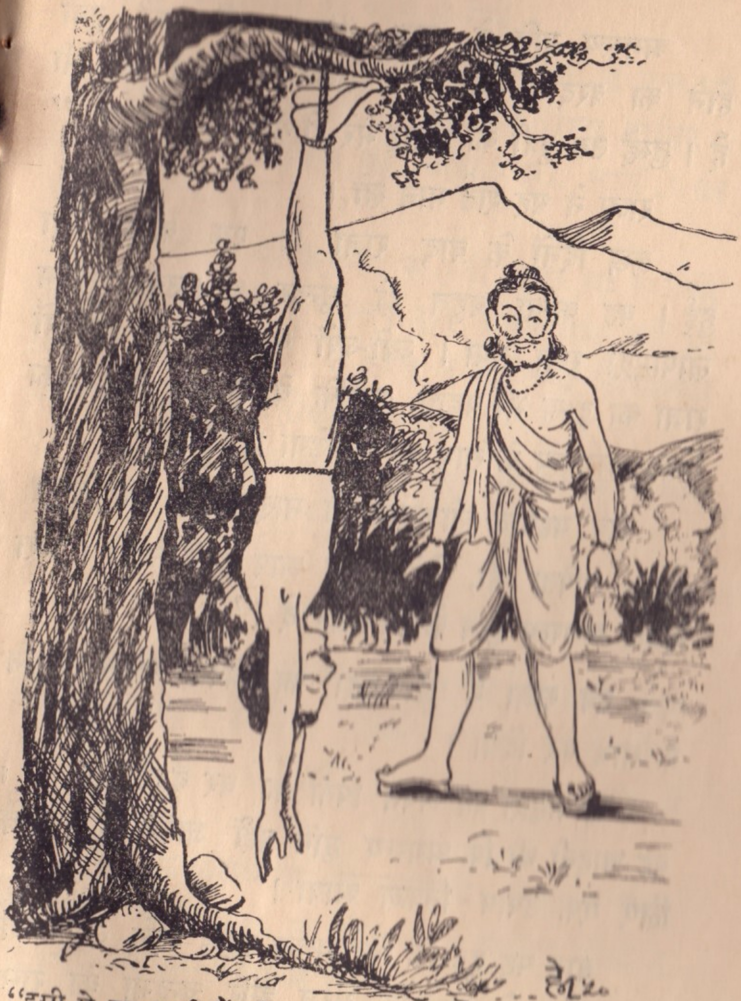
अगस्त्य नाम के एक बहुत बड़े तपस्वी मुनि हो गये हैं। एक बार वे यात्रा करते हुए वन में जा पहुँचे। वहाँ क्या देखते हैं कि एक पेड़ से कुछ तपस्वी उलटे लटके हुए हैं और इस कारण बहुत तकलीफ पा रहे हैं। उन्होंने पूछा कि आप लोग कौन हैं?

इस पर एक तपस्वी ने जवाब दिया—"बेटा, हम तुम्हारे पूर्वज हैं। तुमने विवाह नहीं किया है। इस तरह तुम्हारे बाद हमारे वंश में अब कोई नहीं रह जायगा। इसी से हम दुखी हैं और यह तपस्या कर रहे हैं। अगर तुम्हारा विवाह हो और तुम्हारे एक भी पुत्र पैदा हो, तो हम इस दुख से छूट सकते हैं।"

यह सुन कर अगस्त्य मुनि ने विवाह करने का विचार किया। परन्तु सोचा कि अब विवाह करें तो किससे करें?

उन्हीं दिनों विदर्भ देश के राजा अगस्त्य मुनि के पास पहुँचे। वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—"मुझे सन्तान दीजिये।"





"इसी से हम दुखी हैं और यह तपस्या कर रहे हैं।"—पृष्ठ ४२

अगस्त्य मुनि ने कहा—"राजन्, मैं तुम्हें पुत्री होने का वरदान देता हूँ। लेकिन एक शर्त मेरी भी है। तुम्हें उस पुत्री का विवाह मेरे ही साथ करना पड़ेगा।"

राजा ने यह शर्त मान ली।

कुछ दिनों के बाद राजा के एक कन्या पैदा हुई। वह कन्या बहुत ही सुन्दर थी। उसका नाम लोपामुद्रा रखा गया। ज्यों-ज्यों कन्या बढ़ती त्यों-त्यों राजा का दुःख भी बढ़ता, क्योंकि वे सोचते कि इसका विवाह अगस्त्य के साथ करना पड़ेगा।

जब यहबात लोपामुद्रा को मालूम हुई, तो उसने कहा—"पिता जी, मेरे कारण आप दुःखी न हों। मेरा विवाह अगस्त्य मुनि के साथ कर दें।"

तब राजा ने लोपामुद्रा का विवाह अगस्त्य मुनि के साथ कर दिया।

लोपामुद्रा को अपने पिता का घर बहुत पसंद था। वह चाहती थी कि अगस्त्य मुनि वहीं जाकर रहें। इसके लिए एक उपाय निकल आया।

बात यह हुई कि विन्ध्याचल पहाड़ बढ़ने लगा और इतना ऊँचा हो गया कि सूरज और चन्द्रमा का रास्ता



रोकने लगा। तब देवताओं ने अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की कि वे विन्ध्याचल को बढ़ने से रोकें।

तब वे लोपामुद्रा के साथ विन्ध्याचल के पास गये और बोले—"हे पर्वतराज ! जरा हमें रास्ता दीजिए। मैं लोपामुद्रा को दक्षिण की यात्रा करा लाऊँ, तब आप बढ़ें।'

विन्ध्याचल की अगस्त्य पर बड़ी श्रद्धा थी। उसने अपनी बाढ़ रोक ली। अगस्त्य मुनि दक्षिण देश चले तो गये, पर वहीं बस गये। वे वापस न लौटे और विन्ध्याचल आज भी अपनी बाढ़ रोके खड़ा है।

इस प्रकार लोपामुद्रा की इच्छा पूर्ण हुई और सारे देश को लाभ भी हुआ।

---

## अष्टावक्र

एक ऋषि थे। उनका नाम कहोड़ था। वे बहुत विद्वान् न थे, इसलिए उनके साथी उनकी हँसी उड़ाया करते थे। इसीलिए मारेदुःख के वे समुद्र में डूब कर मर गये।

उनके एक लड़का था, जो जन्म के ही समय टेढ़ा-मेढ़ा था। उसका मुख भी टेढ़ा था। इसलिए लोगों ने इस लड़के का नाम अष्टावक्र रख दिया।

अष्टावक्र की शक्ल-सूरत देखकर उनकी माता बहुत सोच में पड़ी। वह बोली—"मेरे पति मूर्ख थे, इसलिए लोग उनकी हँसी उड़ाते थे। मैंने सोचा था कि मेरा लड़का विद्वान् होगा और उसकी कोई हँसी न उड़ा सकेगा। परन्तु शक्ल-सूरत से यह और भी मूर्ख जान पड़ता है। कहीं यह भी डूब कर न मर जाय! हाय, अब मैं क्या करूँ?"

ऐसा ही वह रोज कहती। तब एक दिन अष्टावक्र बोले—"माताजी, आप मेरी चिंता न करें। मैंने आप के पेट से ही सारी विद्यायें सीख ली हैं।"

माता ने पूछा— "फिर तुम टेढ़े मेढ़े क्यों हुये?"

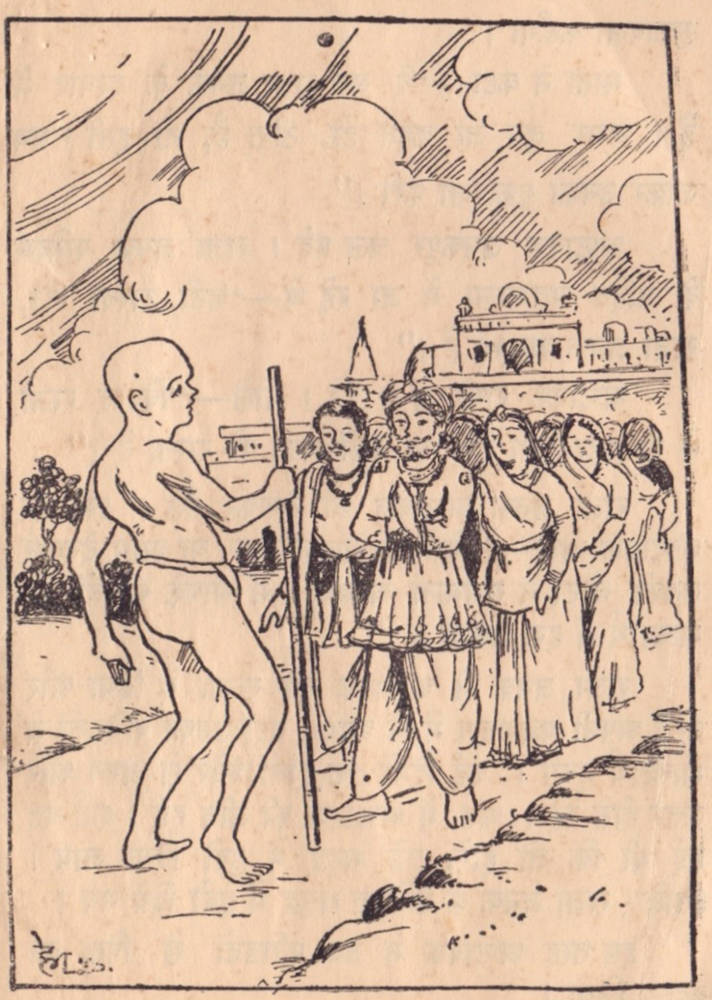
अष्टावक्र बोले—"इसके कारण पिताजी ही हैं।"

माता ने कहा—"वे कैसे हैं?"

अष्टावक्र ने कहा—"सुनिये, जब मैं आप के गर्भ में था, तब पिताजी वेदमंत्र गाया करते थे। वे मंत्रों का शुद्ध पाठ नहीं करते थे, इससे मुझे बड़ा क्रोध लगता था। इसीसे मैं टेढ़ा-मेढ़ा हो गया।"

माता बोली—"सभी उनकी हँसी उड़ाते थे, अब तू भी उड़ाने लगा?"

अष्टावक्र बोले—"नहीं माता जी, उन पंडितों को



"विद्वान् राजा से भी बड़ा होता है।"—पृष्ठ ४८

बुलाइए, जो पिताजी की हँसी उड़ाते थे। मैं उनका मुकाबला करूँगा।"

माता ने कहा—"वे सब राजा जनक के दरबार में हैं। अगर तुम जो कहते हो, ठीक है, तो इसी समय जाकर उनका मुकाबला करो।"

अष्टावक्र जनकपुर चल पड़े। राजा जनक परिवार के सहित यज्ञशाला में जा रहे थे—"हटो, रास्ता दो, राजा जनक आ रहे हैं।"

अष्टावक्र रास्ते से न हटे। बोले—"विद्वान् राजा से भी बड़ा होता है। वह क्यों राजा को रास्ता दे?"

राजा जनक अष्टावक्र को देखकर हँसे। इस पर अष्टावक्र बोले—"किसी की शक्ल-सूरत या आयु देखकर उसको छोटा न समझना चाहिये। मैं आपके पंडितों को शास्त्रार्थ में हरा सकता हूँ।"

राजा जनक ने अष्टावक्र को रास्ता दे दिया और उन्हें अपनी यज्ञशाला में ले आये। वहाँ उनका पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ। कई दिनों तक दोनों ओर से प्रश्न और उत्तर होते रहे। अंत में अष्टावक्र की जीत हुई। शर्त यह हुई थी कि जो हारे, उसे समुद्र में डुबो दिया जाय। इसलिए राजा जनक के पण्डित समुद्र में डुबो दिये गये।

इस तरह अष्टावक्र ने उन पण्डितों से पिता का बदला लिया।

---

मुद्रक—नन्दन प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

## श्रीनाथसिंह-लिखित

बालक बालिकाओं के पढ़ने योग्य मजेदार पुस्तकें :-

| | |
|---|---|
| १—गरुड़ कन्या और अन्य कहानियाँ | ४० नया पैसा |
| २—दो कुबड़े और अन्य कहानियाँ | ४० नया पैसा |
| ३—अनोखी यात्राएँ (कहानियाँ) | ४० नया पैसा |
| ४—तीन दुमकटों की कहानी | ४० नया पैसा |
| ५—श्री गणेश और अन्य कहानियाँ | ५० नया पैसा |
| ६—खेल घर (मजेदार तुक बन्दियाँ) | ४० नया पैसा |
| ७—बाल-गीत (मजेदार तुक बन्दियाँ) | २५ नया पैसा |
| ८—गाँधी जी (पद्यमय संक्षिप्त जीवनी) | २५ नया पैसा |

नोट—इन पुस्तकों को अपने बुकसेलरों से मांगिए न मिले तो सीधा हमें लिखिये।

पता—दीदी कार्यालय
सुभाषनगर, इलाहाबाद-२